

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 13: धृतराष्ट्र का वन-गमन

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



अपने भाई विदुर के मार्गदर्शन में और निष्ठावती गान्धारी के अनुसरण में, वृद्ध अन्धे राजा धृतराष्ट्र प्रातःकाल राजमहल की ओर पीठ फेरकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

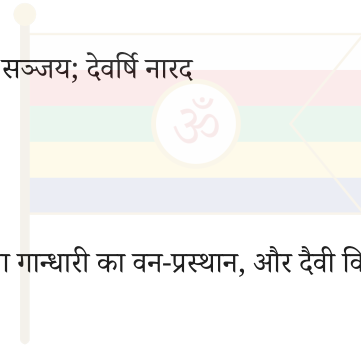
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विजडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। प्रथम स्कन्ध के इस त्रयोदश अध्याय में महायुद्ध को बीते बहुत समय हो चुका है, और बचे हुए परिजन गृहस्थी के सुख में बस चुके हैं। उसी सुख में एक लौटता हुआ तीर्थयात्री प्रवेश करता है — विदुर, जिनका हृदय ज्ञान से नवीन हो चुका है। वे और अधिक सान्त्वना लेकर नहीं, अपितु एक पुकार लेकर आते हैं — वृद्ध, अन्धे राजा धृतराष्ट्र के लिए यह आह्वान कि अन्त से पूर्व जाग उठें, आसक्ति के अन्तिम बन्धन ढीले कर दें, और जब तक समय है, भगवान् की ओर चल पड़ें। यहाँ भागवत, कोमलता से और बिना कठोरता के, त्याग की महान् कला सिखाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 13 (त्रयोदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: धृतराष्ट्र का गृह-त्याग और वन-प्रस्थान
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (कथावाचक); विदुर; राजा युधिष्ठिर; सञ्जय; देवर्षि नारद
- प्रमुख श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में
- मुख्य स्थल: महाभारत-युद्ध के पश्चात् हस्तिनापुर नगर
- केन्द्रीय विषय: विदुर का प्रत्यागमन और उनका वैराग्य-उपदेश, धृतराष्ट्र तथा गान्धारी का वन-प्रस्थान, और दैवी विधान पर नारद जी की शिक्षा
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 1–60
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से सन्दर्भ

द्वादश अध्याय में उत्तरा के गर्भ में सुरक्षित शिशु का जन्म हुआ और उसका नाम परीक्षित रखा गया; विद्वान् ब्राह्मणों ने उसके यशस्वी और धर्ममय राज्य की भविष्यवाणी की, और अन्त में यह बताया कि वह समय आने पर समस्त आसक्ति त्यागकर श्रीहरि के चरणों की शरण लेगा। राजा युधिष्ठिर ने, अपना राज्य पुनः पाकर, श्रीकृष्ण की सहायता से तीन अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये; और भगवान्, अपने स्वजनों के आनन्द हेतु कुछ मास ठहरकर, अन्ततः द्वारका को प्रस्थान कर गये। इसी सुस्थिर और समृद्ध गृह में यह त्रयोदश अध्याय लौटते हुए तीर्थयात्री विदुर को लाता है।

विदुर का हास्तेनापुर लौटना

तीर्थयात्रा के क्रम में मैत्रेय ऋषि से आत्मतत्त्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर विदुर हस्तिनापुर लौटे, क्योंकि उन्हें वह सब ज्ञात हो चुका था जो वे जानना चाहते थे। श्रीगोविन्द के प्रति उनके हृदय में ऐसी अनन्य भक्ति उमड़ आई कि मैत्रेय द्वारा उनके अन्तिम प्रश्नों का उत्तर दिये जाने से पूर्व ही विदुर ने और कुछ नहीं पूछा — उनकी लालसा भगवान् में ही विश्राम पा चुकी थी।



श्रीगोविन्द की भक्ति से परिपूर्ण हृदय लिये, तीर्थयात्री विदुर वर्षों के भ्रमण के पश्चात् हस्तिनापुर के द्वार पर लौटते हैं (श्लोक 1)।

सूत उवाच

विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ।

ज्ञात्वागाद्धास्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥

*sūta uvāca viduras tīrtha-yātrāyām maitreyād ātmano gatim jñātvāgād dhāstinapuram
tayāvāpta-vivitsitah*

अर्थ: सूत जी ने कहा — तीर्थयात्रा के समय मैत्रेय ऋषि से आत्मा का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर, विदुर — जिनकी जिज्ञासा अब तृप्त हो चुकी थी — हस्तिनापुर नगर लौट आये। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 1)

अपने स्वजन को पुनः लौटा देखकर समस्त परिवार हर्ष से दौड़ पड़ा। युधिष्ठिर और उनके भाई, अन्धे राजा धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, कृप, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, तथा परिवार के अन्य सभी सदस्य उनसे इस प्रकार मिले जैसे प्राण लौटने पर मृतप्राय शरीर की इन्द्रियाँ पुनः जाग उठती हैं। उन्होंने विदुर को गले लगाकर और अभिवादन कर, दीर्घ वियोग-जनित प्रेम के अश्रु बहाये; और जब विदुर विश्राम कर, भोजन कर आसन पर बैठ गये, तब राजा युधिष्ठिर ने विनम्रता से सिर झुकाकर सबके समक्ष उनसे प्रश्न किया।

वह समाचार जो विदुर ने नहीं कहा

युधिष्ठिर ने पूछा कि क्या विदुर को स्मरण है कि बाल्यकाल में उन्होंने किस प्रकार उन्हें और उनकी माता को विष तथा अग्नि जैसी अनेक विपत्तियों से बचाया था; उन्होंने पूछा कि भ्रमण में उन्होंने अपना निर्वाह कैसे किया, और किन तीर्थों को अपने चरणों से पवित्र किया; और कोमलता से उन्होंने दूर द्वारका में बसे श्रीकृष्ण के भक्त, अपने स्वजन यादवों का कुशल पूछा।

इन सबका उत्तर विदुर ने क्रमशः दिया — जो कुछ उन्होंने प्रत्यक्ष जाना था, वह कह सुनाया — किन्तु एक बात अनकही रह गई। उन्होंने यादव-वंश पर आने वाले विनाश का कोई उल्लेख नहीं किया, क्योंकि वे स्वभाव से करुणामय थे और अपने स्वजनों को ऐसे समाचार से आहत नहीं करना चाहते थे जिसे वे सह न पाते; उन्हें ज्ञात था कि शोक स्वयं ही शीघ्र उन तक पहुँच जायेगा। इस प्रकार, देवता के समान सम्मानित होकर, वे कुछ समय हस्तिनापुर में शान्तिपूर्वक रहे, सदा अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र का कल्याण चाहते और सबको आनन्द देते हुए। किन्तु काल — जिसकी गति को रोक पाना अति कठिन है — गृह में आसक्त हो चुके परिवार के लिए अलक्षित ही बीतता रहा।

विदुर का जागृत करने वाला उपदेश धृतराष्ट्र को

अन्ततः विदुर ने अनुभव किया कि वेला आ पहुँची है, और उन्होंने वृद्ध अन्धे राजा से ऐसे प्रेम के साथ कहा जो चापलूसी नहीं करता। उन्होंने चेताया कि एक भयंकर काल निकट आ चुका है; अब विलम्ब न करें। वह सर्वशक्तिमान् काल, जिससे बचने का कोई उपाय नहीं, सब पर आ पहुँचा है, और जब वह आता है तो मनुष्य को उस प्राण से भी क्षण भर में वियुक्त कर देता है जो उसे सर्वाधिक प्रिय है — धन आदि की तो बात ही क्या।

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ।

राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥

viduras tad abhipretya dhṛtarāṣṭram abhāṣata rājan nirgamyatām śīghraṁ paśyedaṁ bhayam āgatam

अर्थ: यह अनुभव कर विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा — हे राजन्! शीघ्र प्रस्थान कीजिए; देखिए, यह भयंकर वेला हम सब पर आ पहुँची है। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 18)



विदुर अपने अन्धे ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र को कोमलता से समझाते हैं कि मृत्यु के आने से पूर्व आसक्ति त्यागकर वन की ओर चल पड़ें (श्लोक 18)।

तब विदुर ने अपने भाई के जीवन का दर्पण उनके सम्मुख रखा। धृतराष्ट्र के पितर, भाई और पुत्र सब मारे जा चुके थे; उनका शरीर वृद्धावस्था से जर्जर था; और अब वे उसी युधिष्ठिर की छत के नीचे रह रहे थे जिस परिवार का उन्होंने कभी अनिष्ट किया था, और उसी का दिया अन्न आश्रित की भाँति ग्रहण कर रहे थे। और कितने काल तक, विदुर ने पूछा, वे उनकी कृपा पर टिके जीवन से चिपके रहेंगे जिनका घर जलाया गया, जिनकी रानी का अपमान हुआ, जिनकी भूमि छीनी गई? वृद्धावस्था इस शरीर को उनसे उतनी ही निश्चितता से छीन लेगी जितनी निश्चितता से जीर्ण वस्त्र गिर जाते हैं — चाहे वे चाहें या न चाहें। कहीं अधिक बुद्धिमान, विदुर ने कहा, वह मनुष्य है जो — आसक्ति से मुक्त, बन्धन कटे हुए — उस शरीर को चुपचाप, अलक्षित और स्वजनों से दूर त्याग देता है जो अपना प्रयोजन पूरा कर चुका है। जो संसार से विरक्त होकर श्रीहरि को हृदय में धारण करता और गृह त्याग देता है, वही मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ।

हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २७ ॥

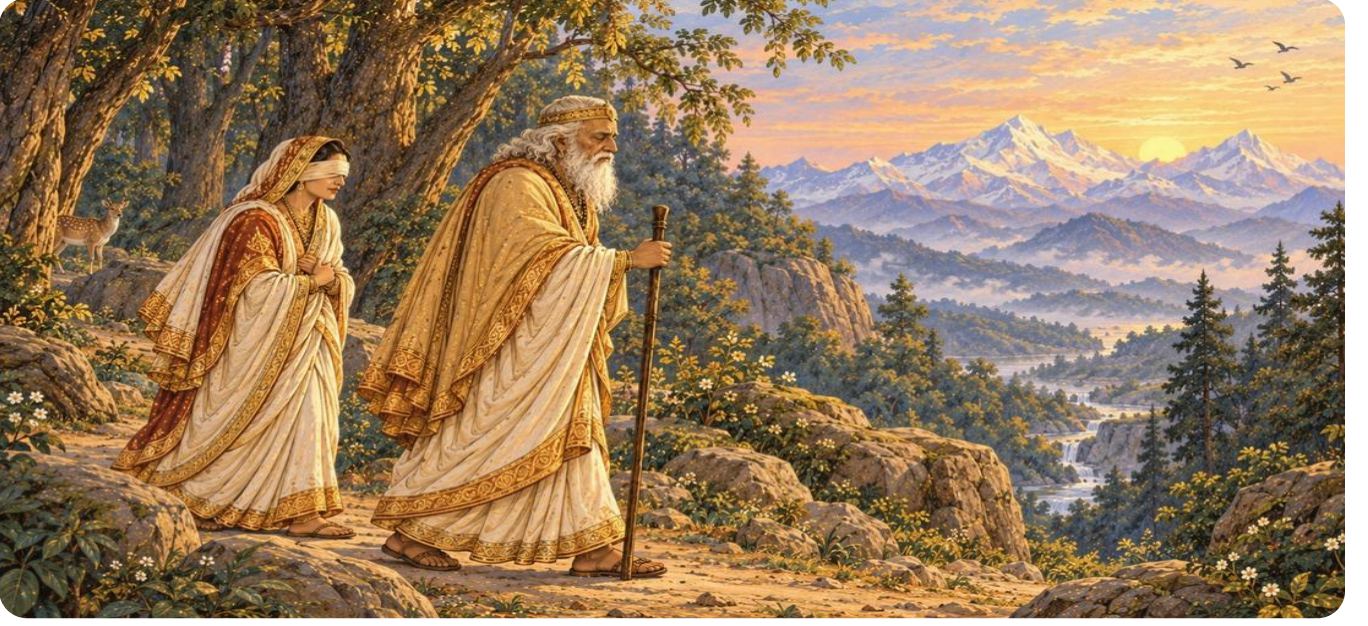
yaḥ svakāt parato veva jāta-nirveda ātmavān hṛdi kṛtvā hariṁ gehāt pravrajat sa narottamaḥ

अर्थ: जो अपने विवेक से अथवा दूसरे के उपदेश से संसार से विरक्त हो जाता है, आत्मवान् बन जाता है, और श्रीहरि को हृदय में धारण कर गृह से निकल पड़ता है, वही मनुष्यों में श्रेष्ठ है। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 27)

अतः, विदुर ने आग्रह किया, वे अपने स्वजनों से अलक्षित रहकर चुपचाप निकल जायें और उत्तर दिशा की ओर, हिमालय की ओर प्रस्थान करें।

अन्धे राजा का मौन प्रस्थान

वचनों ने अपना कार्य किया। यद्यपि उनके बाह्य नेत्र अन्धकार में थे, तथापि अनुज के उपदेश से अन्धे राजा का ज्ञान-रूपी अन्तर्नेत्र खुल गया। अपने स्वजनों से बाँधने वाले स्नेह के दृढ़ बन्धनों को काटकर धृतराष्ट्र उठ खड़े हुए और प्रस्थान कर गये, और स्वयं विदुर उनके मार्गदर्शक बनकर आगे-आगे चले।



ज्ञान का अन्तर्नेत्र खुल जाने पर, धृतराष्ट्र स्नेह के बन्धन काटकर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं, और उनकी निष्ठावती पत्नी गान्धारी पीछे-पीछे चलती हैं (श्लोक 29-30)।

एवं राजा विदुरेणानुजेन

प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः ।

छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिमनो

निश्चक्राम भ्रातृसन्दर्शिताध्वा ॥ २९ ॥

evam rājā vidureṇānujena prajñā-caṣṣur bodhita ājamīḍhaḥ chittvā sveṣu sneha-pāśān draḍhimno niścakrāma bhrātṛ-sandarśitādhvā

अर्थ: इस प्रकार अपने अनुज विदुर द्वारा ज्ञान-नेत्र में जागृत होकर, अजमीढ-वंशी राजा धृतराष्ट्र ने अपने स्वजनों के प्रति स्नेह के दृढ़ बन्धन काट दिये और चल पड़े, उनके भाई ने उन्हें मार्ग दिखाया। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 29)

अपने पति को हिमालय की ओर प्रस्थान करते देखकर — वह स्थान जो संन्यासियों को उतना ही प्रिय है जितना धर्मयुद्ध वीर को — सुबल की पुत्री, सदा अपने स्वामी की सेवा में निष्ठावती, साध्वी गान्धारी भी चुपचाप उनके पीछे चल पड़ीं।

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री

पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।

हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं

मनस्विनामिव सत्सम्प्रहारः ॥ ३० ॥

patiṁ prayāntaṁ subalasya putrī pati-vratā cānujagāma sādhvī himālayaṁ nyasta-daṇḍa-praharṣaṁ manasvinām iva sat samprahāraḥ

अर्थ: सुबल की पुत्री, पतिव्रता साध्वी गान्धारी अपने स्वामी के पीछे चल पड़ीं जब वे हिमालय की ओर प्रस्थान कर रहे थे — वह स्थान जो हिंसा का दण्ड त्याग देने वालों को उसी प्रकार आनन्दित करता है जैसे धर्मयुद्ध वीरों को। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 30)

युधिष्ठिर की अपने गुरुजनों की खोज

अगले प्रातः राजा युधिष्ठिर, प्रातःकालीन सन्ध्या कर, पवित्र अग्नि में आहुति देकर, और ब्राह्मणों को यथारीति दान देकर, सदा की भाँति अपने गुरुजनों के कक्ष में प्रणाम करने गये — और वहाँ कोई न मिला। न उनके चाचा, न उनकी चाची गान्धारी। व्याकुल हृदय से उन्होंने पास बैठे सञ्जय की ओर मुड़कर पूछा कि उनके वृद्ध और अन्धे चाचा कहाँ गये; उनकी शोकाकुल चाची कहाँ हैं; और उनके प्रति सदा कृपालु रहने वाले उनके छोटे चाचा विदुर कहाँ चले गये। व्याकुल होकर उन्हें यह भी भय हुआ कि कहीं वे, अपने ही मूर्ख हाथों से दुर्व्यवहार की आशंका से, गंगा में तो नहीं समा गये — वही चाचा जिन्होंने पिता पाण्डु के देहान्त के पश्चात् उन्हें और उनके भाइयों को, कोमल शिशु रहते हुए, प्रत्येक संकट से बचाया था।



प्रातःकाल गुरुजनों के कक्ष रिक्त पाकर, व्याकुल युधिष्ठिर सञ्जय से पूछते हैं कि धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर कहाँ चले गये।

किन्तु सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्र के इस अकस्मात् अन्तर्धान से इतने शोकाकुल थे कि पहले तो एक शब्द भी न बोल सके; उन्होंने केवल अपने अश्रु पोंछे, मन को स्थिर किया, और स्वीकार किया कि उन्हें राजा अथवा रानी के संकल्प का कुछ भी ज्ञान नहीं — उन्हें भी उन महात्माओं ने पीछे छोड़ दिया था।

नारद जी का उपदेश: संसार भगवान् के हाथ में है

उसी क्षण देवर्षि नारद, तुम्बुरु के साथ, वहाँ पधारे। युधिष्ठिर और उनके भाई श्रद्धापूर्वक उनके स्वागत को उठ खड़े हुए, और राजा ने अपना शोक ऋषि के समक्ष रखा: उन्हें ज्ञात नहीं कि उनके चाचा और चाची कहाँ गये, और उन्होंने नारद जी से — जो अकेले ही इस शोक के अगाध सागर के पार उन्हें एक कुशल कर्णधार की भाँति ले जा सकते थे — मार्गदर्शन की याचना की। और ऋषिश्रेष्ठ नारद ने उन्हें ऐसी शिक्षा दी जो समस्त अध्याय को एक परिवार के निजी शोक से उठाकर शाश्वत सत्य के प्रकाश में ले आती है।

किसी के लिए शोक न करो, नारद जी ने कहा, क्योंकि समस्त संसार भगवान् के अधीन चलता है; सब प्राणी और उनके शासक उन्हीं की उपासना करते हैं। वही हैं जो प्राणियों को जोड़ते हैं, और वही अकेले जो उन्हें पृथक् करते हैं।



देवर्षि नारद, अपने साथ तुम्बुरु को लिये, युधिष्ठिर को यह शिक्षा देकर सान्त्वना देते हैं कि भगवान् ही समस्त प्राणियों को जोड़ते और पृथक् करते हैं (श्लोक 41)।

नारद उवाच

मा कञ्चन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत् ।

लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ।

स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ ४१ ॥

*nārada uvāca mā kañcana śuco rājan yad īśvara-vaśam jagat lokāḥ sapālā yasyeme vahanti
balim īśituḥ sa saṁyunakti bhūtāni sa eva viyunakti ca*

अर्थ: नारद जी ने कहा — हे राजन्! किसी के लिए शोक न करो, क्योंकि यह समस्त संसार भगवान् के अधीन है; समस्त लोक अपने पालकों सहित उन्हीं परम शासक को अपनी भेंट अर्पित करते हैं। वही समस्त प्राणियों को जोड़ते हैं, और वही अकेले उन्हें पृथक् करते हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 41)

जैसे बैल नाक में पिरोई डोरियों से और एक दृढ़ रस्सी से बँधे रहते हैं, नारद जी ने समझाया, वैसे ही मनुष्य अपने विविध नाम और कर्तव्यों की डोरियों से उस एक वेद-रूपी रस्सी से बँधकर भगवान् की सेवा करते हैं। और जैसे खिलाड़ी के खिलौने उसकी अपनी इच्छा से जुड़ते और अलग होते हैं, वैसे ही मनुष्यों का मिलना और बिछुड़ना पूर्णतः भगवान् की इच्छा पर निर्भर है।

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ।

इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४३ ॥

yathā krīḍopaskarāṇām saṁyoga-vigamāv iha icchayā krīḍituḥ syātām tathaiveśecchayā nṛṇām

अर्थ: जैसे खिलाड़ी के खेलौनों का जुड़ना और बिलुड़ना केवल खेलने वाले की इच्छा से होता है, वैसे ही मनुष्यों का मिलना और बिलुड़ना भी केवल भगवान् की इच्छा से होता है। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 43)

चाहे कोई आत्मा को नित्य माने, अथवा शरीर को नश्वर, अथवा उनके बीच कोई मत रखे, नारद जी ने आगे कहा, मोह-जनित स्नेह के अतिरिक्त शोक का कोई वास्तविक कारण नहीं। यह शरीर, पाँच तत्त्वों से बना और काल, भाग्य तथा प्रकृति के तीन गुणों के अधीन, स्वयं की भी रक्षा नहीं कर सकता — तब वह दूसरे को कैसे आश्रय देगा? प्राणी प्राणियों पर जीते हैं, और इस सबके बीच वही एक स्वयंप्रकाश भगवान् हैं, प्रत्येक देहधारी की आत्मा, जो द्रष्टा और दृश्य दोनों रूपों में प्रकाशित होते हैं, अपनी माया से असंख्य रूपों में प्रकट होते हुए। और वही भगवान्, जो सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, अब इस पृथ्वी पर काल के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, देव-विरोधियों के भार को हरने के लिए।

सोऽयमद्य महाराज भगवान् भूतभावनः ।

कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥ ४९ ॥

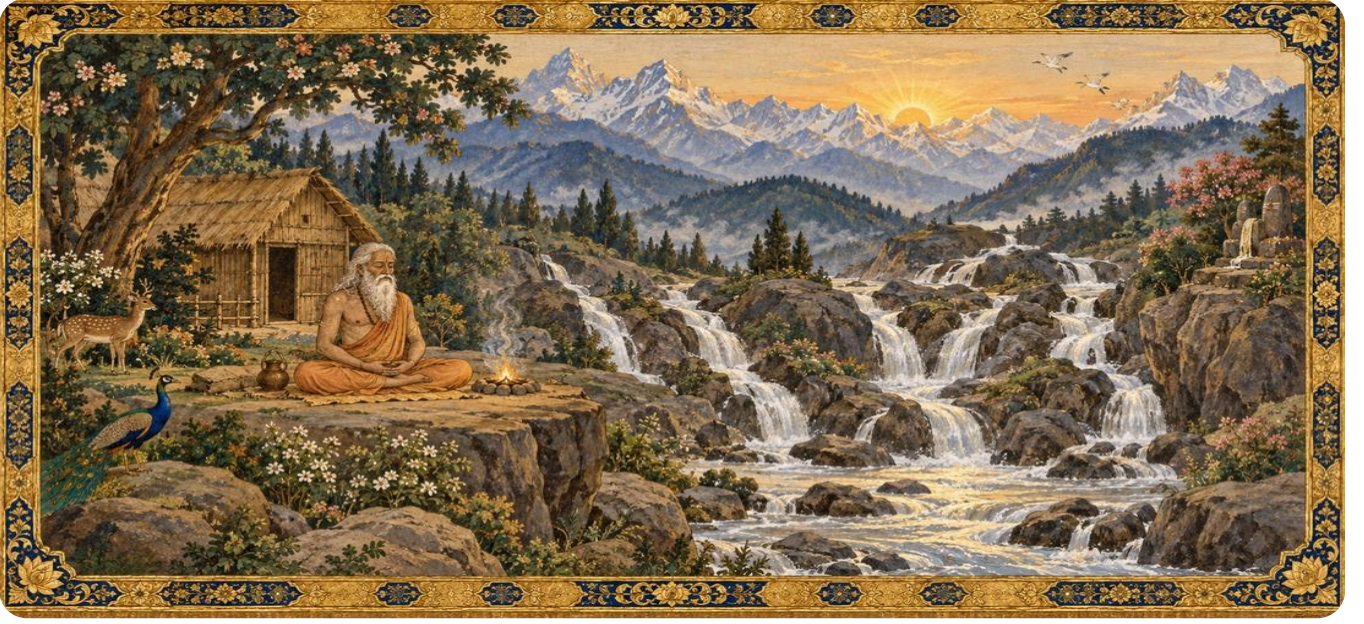
so 'yam adya mahārāja bhagavān bhūta-bhāvanaḥ kāla-rūpo 'vatīrṇo 'syām abhāvāya sura-dviṣām

अर्थ: हे महाराज! वही भगवान्, समस्त प्राणियों के जनक, इस समय काल का रूप धारण कर इस धरा पर उतर आये हैं, ताकि देवताओं से द्वेष रखने वालों का नाश हो सके। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 49)

देवताओं का कार्य, नारद जी ने कहा, अब लगभग सम्पन्न हो चुका है; भगवान् केवल तब तक ठहरे हैं जब तक शेष कार्य पूर्ण न हो जाये। युधिष्ठिर को भी तब तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब तक भगवान् संसार में उपस्थित हैं।

धृतराष्ट्र कहाँ गये हैं

तत्पश्चात् नारद जी ने व्याकुल राजा को ठीक-ठीक बताया कि उनके गुरुजन कहाँ गये हैं, जिससे उनका भय विस्मय में बदल जाये। धृतराष्ट्र, विदुर और अपनी निष्ठावती पत्नी गान्धारी के साथ, हिमालय के दक्षिण में उस सप्तस्रोत नामक स्थान के आश्रम पर पहुँच चुके थे, जहाँ आकाशगंगा सात महर्षियों के आनन्द हेतु सात धाराओं में विभक्त हो बहती है। वहाँ वृद्ध राजा, दिन में तीन बार स्नान कर, अग्नि में आहुति देकर, और केवल जल पर रहकर, शान्त और समस्त तृष्णाओं से मुक्त हो चुके थे। अपने आसन और प्राण को वश में कर, इन्द्रियों को विषयों से समेटकर, उन्होंने श्रीहरि के निरन्तर चिन्तन से अपने मन को तीनों गुणों से निर्मल कर लिया था; अपने अहंकार को बुद्धि में, बुद्धि को जीवात्मा में, और आत्मा को परम ब्रह्म में विलीन कर, वे अब स्तम्भ के समान निश्चल बैठे थे, समस्त कर्तव्यों को त्यागकर। कोई भी, नारद जी ने कहा, उन्हें विचलित न करे।

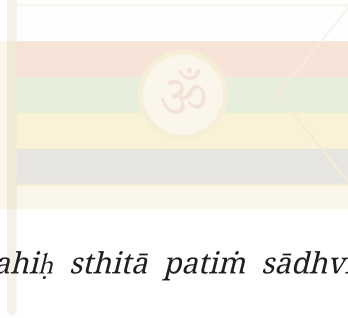


सप्तस्रोत के आश्रम पर, जहाँ आकाशगंगा सात धाराओं में बहती है, वृद्ध राजा धृतराष्ट्र योग-समाधि में बैठे हैं, शान्त और श्रीहरि में स्थिर।

अब से पाँचवें दिन, नारद जी ने भविष्यवाणी की, धृतराष्ट्र अपने शरीर का त्याग कर देंगे, और वह भस्म हो जायेगा; और उनकी साध्वी पत्नी, कुटी और अपने स्वामी के शरीर को अग्नि में जलते देखकर, अपने पति का अनुसरण करती हुई स्वयं भी अग्नि में प्रवेश करेंगी।

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोत्तेजे ।

बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनु वेक्ष्यति ॥ ५८ ॥



dahyamāne 'gnibhir dehe patyuh patnī sahoṭaje bahiḥ sthitā patiṁ sādhvī tam agnim anu vekṣyati

अर्थ: जब उनके पति का शरीर कुटी सहित अग्नि में जल रहा होगा, तब बाहर खड़ी साध्वी पत्नी उसी अग्नि में प्रवेश कर अपने स्वामी का अनुसरण करेंगी। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 58)

और विदुर, नारद जी ने कहा, उस अद्भुत दृश्य को हर्ष और शोक के मिश्रित भाव से देखकर, पुनः पवित्र तीर्थों की यात्रा पर निकल पड़ेंगे।

युधिष्ठिर का शोक विलीन

यह सब कहकर, देवर्षि नारद, तुम्बुरु के साथ, तत्काल स्वर्ग को आरूढ़ हो गये। और युधिष्ठिर ने, ऋषि के वचनों को अपने हृदय में धारण कर, अपना शोक त्याग दिया।

प्रमुख श्लोक

अध्याय नारद जी के उपदेश के फल पर समाप्त होता है — ज्ञान के द्वारा एक धर्मात्मा पुरुष के शोक का शमनः

इत्युक्त्वाथारुहत् स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः ।

युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाजहाच्छुचः ॥ ६० ॥

ity uktvāthāruhat svargam nāradaḥ saha-tumburuḥ yudhiṣṭhiro vacas tasya hṛdi kṛtvājahāc chucaḥ

अर्थ: इस प्रकार कहकर, नारद जी तुम्बुरु के साथ स्वर्ग को आरुढ़ हो गये; और युधिष्ठिर ने, ऋषि के वचनों को हृदय में धारण कर, अपना शोक त्याग दिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 13, श्लोक 60)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. ज्ञान ही प्रेम का सच्चा रूप है। विदुर अपने भाई को सान्त्वना देने नहीं, अपितु जगाने लौटते हैं (श्लोक 18)। जो उपदेश कठोर प्रतीत होता है — “तुरन्त प्रस्थान करें” — वही वास्तव में सबसे गहरी कृपा है, क्योंकि वह वृद्ध राजा को समय रहते मोक्ष की ओर मोड़ देता है। सच्चा प्रेम कभी-कभी कठिन, किन्तु उद्धारक वचन कहने को कहता है।
2. त्याग सुजीवित जीवन का मुकुट है। जिसका मन वैराग्य से जाग उठा है और जो प्रभु को अन्तःकरण में बसाकर घर-बार से नाता तोड़ लेता है, वही मनुष्यों में सर्वोत्तम कहलाता है (श्लोक 27)। भागवत उस आत्मा का सम्मान करता है जो निराशा से नहीं, अपितु जीवन के अन्तिम चरण में भगवान् को खोजने के लिए वस्तुओं और आसक्तियों को त्याग देती है।
3. अन्तर्नेत्र तब भी खुल सकता है जब बाह्य नेत्र अन्धकार में हों। आजीवन अन्धे धृतराष्ट्र अपने भाई के वचनों से ज्ञान-नेत्र पाते हैं और स्नेह के बन्धन काट देते हैं (श्लोक 29)। आध्यात्मिक दृष्टि शरीर की इन्द्रियों पर निर्भर नहीं; वह विनम्रता से ग्रहण किये सत्य से जागती है।
4. मिलन और वियोग केवल भगवान् के अधीन हैं। नारद जी सिखाते हैं कि भगवान् ही समस्त प्राणियों को जोड़ते और पृथक् करते हैं, जैसे खिलाड़ी अपने खिलौने एकत्र और बिखेरता है (श्लोक 41, 43)। जब हम यह समझ लेते हैं कि मिलन और वियोग हमसे अधिक बुद्धिमान् हाथ में हैं, तो शोक की कुचल देने की शक्ति क्षीण हो जाती है।
5. निष्ठावती भक्ति प्रेम का अन्त तक अनुसरण करती है। सदा निष्ठावती गान्धारी अपने पति का वन तक और, नारद जी की भविष्यवाणी अनुसार, अग्नि तक अनुसरण करती हैं (श्लोक 30, 58)। उनकी दृढ़ता को शास्त्र निष्ठामय सेवा के जीवन के फल रूप में सम्मान देता है।
6. हृदय में धारण किये पवित्र वचन शोक को विलीन कर देते हैं। युधिष्ठिर का शोक बलपूर्वक नहीं मिटता, अपितु नारद जी के उपदेश को हृदय में सँजोने पर पिघल जाता है (श्लोक 60)। सुना और धारण किया गया ज्ञान — केवल सुना और भुलाया गया नहीं — ही शोकाकुल हृदय को शान्त करता है।

एक भक्तिमयी चिन्तन

इस अध्याय के जीवन-अन्त के चित्रण में एक दुर्लभ कोमलता है। धृतराष्ट्र निष्कलंक पुरुष नहीं हैं; वे दुर्बल, पक्षपाती, और महान् अन्यायों में सहभागी रहे हैं, और शास्त्र इसे छिपाता नहीं। फिर भी भागवत उन्हें उनकी विफलता में नहीं छोड़ता। एक ऐसे भाई के माध्यम से जो उन्हें इतना प्रेम करता है कि सत्य कह सके, और एक ऐसे गन्तव्य के माध्यम से जो उनके अन्तिम दिनों को उपासना में बदल देता है, वृद्ध राजा को भली

भाँति अन्त करने का अवसर मिलता है — एक सुखी घर से निकलकर भगवान् की उपस्थिति में प्रवेश करने का। यह हम सबके लिए एक शान्त, आशामय शिक्षा है। यह कहती है कि कोई जीवन इतना त्रुटिपूर्ण नहीं, और कोई वेला इतनी विलम्बित नहीं, कि भगवान् की ओर मुड़ा न जा सके। हमारा अपना बहुत-सा दुःख उसी को कसकर पकड़े रहने से आता है जिसे एक दिन छोड़ना ही है: हमारी भूमिकाएँ, हमारा धन, हमारे प्रियजन। नारद जी का खिलाड़ी और खिलौनों का रूपक निष्ठुर नहीं; वह मुक्त करने वाला है। यदि हमारे जीवन के महान् मिलन और वियोग उस एक के हाथ में हैं जो हमसे अधिक बुद्धिमान् और अधिक करुणामय है, तो हम प्रत्येक वस्तु को थोड़ा और हलके से, और उन्हें थोड़ा और निकटता से थाम सकते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, किसी एक ऐसी वस्तु को चुनिए जिसे आप बहुत कसकर पकड़े हुए हैं — भविष्य की कोई चिन्ता, कोई भूमिका जिसके खोने का भय है, अथवा कोई आसक्ति जो चुपचाप एक बन्धन बन गई है — और, धृतराष्ट्र के जागरण का अनुकरण करते हुए, उसे भीतर ही भीतर भगवान् के हाथ में अर्पित कर दीजिए। कुछ क्षण शान्त बैठिए, धीरे साँस लीजिए, और नारद जी की शिक्षा से एक सरल विचार दोहराइए: “भगवान् ही जोड़ते और पृथक् करते हैं; सब कुछ उनके हाथ में सुरक्षित है।” फिर, युधिष्ठिर की भाँति, इन वचनों को केवल सुनिए मत, अपितु इनमें से एक को दिन भर हृदय में धारण कीजिए, और जब भी वह चिन्ता लौटे, वह आपकी पकड़ को ढीला कर दे।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का त्रयोदश अध्याय समाप्त होता है, जो नैमिष वन की कथा का अंश है, प्रथम स्कन्ध में — वह महान् शास्त्र जिसे भगवत्प्राप्त जन परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 13 में, हमने देखा कि तीर्थयात्री विदुर भक्ति से नवीन हृदय लिये हस्तिनापुर लौटते हैं; हमने सुना कि वे अपने अन्धे भाई धृतराष्ट्र को अन्त से पूर्व आसक्ति त्यागकर भगवान् की ओर चलने का उपदेश देते हैं; और हमने देखा कि वृद्ध राजा का अन्तर्नेत्र खुल जाता है, जिससे वे मौन होकर वन को प्रस्थान करते हैं, और निष्ठावती गान्धारी उनके पीछे चलती हैं। हमने युधिष्ठिर की अपने अन्तर्धान हुए गुरुजनों की व्याकुल खोज में भाग लिया, और देवर्षि नारद के माध्यम से यह महान् सान्त्वना पाई कि समस्त मिलन और वियोग भगवान् की इच्छा में विश्राम पाते हैं, जो स्वयं काल के रूप में पृथ्वी का भार हरने अवतीर्ण हुए हैं। और हमने जाना कि वृद्ध राजा कहाँ गये — सप्तस्रोत में योग-जीवन की ओर, और एक ऐसे अन्त की ओर जो पराजय नहीं, अपितु मुक्ति है। हम भी सीखें कि अपने प्रियजनों और अपने दिनों को भगवान् के हाथ में थामें, और जब तक मार्ग खुला है, भगवान् की ओर चलें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (हिन्दी-संस्कृत), प्रथम स्कन्ध, त्रयोदश अध्याय, पुस्तक-पृष्ठ 49-54।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेख एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण भक्तिमयी पुनर्कथा है (कॉपीराइट मोड B)। किसी प्रकाशक के अनुवाद अथवा भाष्य को उद्धृत नहीं किया गया है; श्लोकों की “अर्थ” पंक्तियाँ मौलिक श्रद्धामय भावानुवाद हैं। यह लेख यह संकेत नहीं करता कि कोई प्रकाशक, पुस्तकालय अथवा संस्था इसका प्रायोजन या समर्थन करती है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-13-dhritarashtra-leaves-home-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

